E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 5 | May 2025

हिन्दी फिल्मों में महिलाओं का चरित्र-चित्रण: पर्दे पर महिला पात्रों की भूमिका

डॉ. रचना गंगवार [1], प्रिंसी मिश्रा [2]

[1] एसोसिएट प्रोफेसर, मास कम्युनिकेशन & जर्नलिज़्म विभाग, बाबासाहेब भीमराओ अंबेडकर यूनिवरसिटी, लखनऊ

[2] पी.एच.डी. स्कॉलर, मास कम्युनिकेशन & जर्नलिज़्म विभाग, बाबासाहेब भीमराओ अंबेडकर यूनिवरसिटी, लखनऊ

सारांश:

फिल्मों को हम समाज में स्त्री के भीतर के अंतर विरोध और दमन को आवाज़ देने के एक सशक्त माध्यम के रूप में देख सकते हैं। चूंकि सिनेमा ज़हिर तौर पर समाज का आईना होता है, ज़रूरी है कि समाज अपनी ओर एक नज़र देखे। इस शोध में चर्चा का विषय मुख्य रूप से तीन क्रांतिकारी फिल्में है, जो दर्शकों को झकझोर कर जगाने का काम करती हैं। इन कहानियों की पटकथा नायिकाओं के इर्द-गिर्द लिखी गई हैं। भूमिका, लज्जा और अर्थ तीनों ही फिल्मों की कहानियाँ नायिकाओं के कंधों पर आगे बढ़ती हैं। जीवन के संघर्ष से लेकर, अस्तित्व की लड़ाई तक का सफर तय करते इन फिल्मों के मुख्य किरदार समाज को औरतों की ओर एक नय दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित करने का काम करते हैं।

1. प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से कुछ चुनिन्दा हिन्दी फिल्मों में महिला पात्रों के पर्दे पर चित्रण का विस्तार पूर्वक विवरण प्रस्तुत करता है। जिसके लिए कुछ महिला प्रधान फिल्मों का बहुत बारीकी से निरीक्षण किया गया है तथा उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है। समाज में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सशक्त शुरुआत अमूमन विषय-विशेश पर स्वतंत्र संवाद से ही होती है। सिनेमा संचार का एक सरल, सहज, मनोरंजन से भरपूर एवं सर्वव्यापी माध्यम है। सिनेमा न केवल परिवर्तन का माध्यम भर है, बल्कि तेजी से बदलते समाज को पर्दे पर रेखांकित कर इस परिवर्तन को समाज में प्रेषित भी करता है। सिनेमा के शुरुआती दौर में महिला पात्र भी पुरुष ही निभाते थे या फिर समाज के उस तबके से महिलाओं को इन पत्रों को निभाने के लिए चुना जाता था जिन्हें समाज अछूत या सम्मान के योग्य नहीं समझता था। तथाकथित भले घरों की औरतों द्वारा फिल्मों में काम करना तमाम भ्रांतियों से घिरा हुआ था, नाच-गाने से अधिक इसे कुछ नहीं समझा जाता था। इसीलिए ध्यान देने वाली बात ये है कि फिल्मों में महिलाओं की भूमिका स्वभाव से क्रांतिकारी व धार के विपरीत ही रहीं है। फिल्म निर्माण के विभिन्न विभागों में महिलाओं की हिस्सेदारी ज़रूर बढ़ी है, लेकिन पुरूषों की तुलना में यह अभी तक नहीं पहुंचा है।

2. आधुनिकता के दौर में पर्दे पर बदलता स्त्री चरित्र

महिलाओं की भागीदारी और योगदान को लेकर हमेशा से उदासीन रहा भारतीय सिनेमा धीरे-धीरे बदलाव की ओर अग्रसर है। वर्तमान काल में हमें ढेरों महिला प्रधान फिल्मों के उदाहरण मिल जाएंगे। साथ ही फिल्मों में महिला पात्रों के योगदान व उनके चरित्र-चित्रण में भी बदलाव देखने को मिलता है।

हालांकि यह कहना बिलकुल गलत होगा की हिंदी में महिलाओं पर केंद्रित फिल्में बनी ही नहीं। बल्कि शुरुआती दौर की हिन्दी फिल्मों का बारीक निरीक्षण किया जाए तो पता चलता है की ज़्यादातर हिंदी फिल्मों में महिला पात्र का पारंपरिक चित्रण ही किया गया है। ऐसी बहुत सी फिल्में हम शुरुआती दौर एन देखते हैं जहां अपने अधिकार के आवाज़ उठाना या लड़ना तो दूर बल्कि महिलाएं चुपचाप प्रताड़ना सहती आयीं हैं। जैसे- **दहेज, मदर इंडिया, मैं चुप रहूंगी, बंदिनी, साहब बीबी और गुलाम, पाकीज़ा, गुड्डी, आंधी, मौसम, राम तेरी गंगा मैली, तवायफ, निकाह, उमराव**

जान आदि ऐसी ज़रूरी फिल्में हैं जो फिल्म जगत में बेहतरीन फिल्में मानी जाती हैं और महिलाओं के नज़रिये से कहानी कहती हैं। परंतु यह सभी फिल्में अपने महिला पत्रों को निरीह और नितांत असहाय दिखती हैं। जो अपने समकक्ष खड़े पुरुष पात्र पर निर्भर भी हैं और हर तरह से उनसे कमतर भी।

80 के दशक के बाद की फिल्मों की बात करें तो हम फ़िल्मकारों में महिला चेतना को जागते हुये देखते हैं। इसके बाद ही हम देखते हैं कि फ़िल्मकारों और अभिनय ने एक औरत कि भावनाओं को विशेष महत्व देना शुरू किया। स्त्री पत्रों को एक स्वतन्त्रता मिलनी शुरू हुई। 90 के दशक के बाद हिंदी सिनेमा साहित्यिक विमर्शों, उदारीकरण और आधुनिकता से जुड़ता चला गया। वॉटर, फायर, अर्थ, तर्पण, कामसूत्र, सत्ता, चमेली, फैशन, हेरोइन, अस्तित्व, आदि फ़िल्मों ने सिनेमा में महिला विमर्श को एक नयी जगह दी। इसी दौर ने दर्शकों को काफ़ी हद तक संवेदनशील और जागरूक बनाने में भी सहायता की है।

3. पर्दे पर औरतों की बदलती भूमिका को दर्शाती कुछ चुनिन्दा फिल्मों के उदाहरण

3.1 भूमिका (1977)

श्याम बेनिगल ने इस फिल्म के माध्यम से दर्शकों के मन में उमड़ रहे कई प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। यह फिल्म एक मराठी फिल्म 'सांगत्ये आएका' का रीमेक है। जो कि एक मराठी एक्ट्रेस की आत्मकथा है। कहानी की पटकथा का मूलाधार समाज व परिवार के हाथों महिला का शोषण है।

फिल्म में अभिनेत्री **'स्मिता पाटिल'** ने एक **'उषा'** नाम का किरदार निभाया है जो एक दृढ़ निश्चयी महिला है और अपने सपनों को पूरा करने के लिए अपने हालातों से लड़ने की हिम्मत रखती है। उषा के शुरुआती जीवन संगीत और फिल्मों से घिरा रहा। शुरुआती दौर में वह अपनी नानी से संगीत सीखती है और गाने से ही अपने करियर की शुरुआत करती है। फिल्म में हम एक ही किरदार की दो कहानियाँ समानान्तर रूप से देखते है। एक उषा की कहानी जो कि एक एक्ट्रेस है और दूसरी उसके निजी जीवन की कहानी। फिल्म में हम समकालीन संगीत और नृत्य को हावी देखते हैं।

एक सफल एक्ट्रेस उषा निजी जीवन में निराशा का ही सामना करती है। ज़िंदगी से भरपूर एक्ट्रेस जब उस दुनिया से निकल घर को आती है तो मायूसी ही पाती है। शुरुआती दौर में स्मिता के पिता उसपर बहुत अत्याचार करते हैं। जिससे बचने के लिए वो जिस शादी के बंधन में बंधती है वहाँ भी उसे मानसिक और शारीरिक प्रताड़णा का सामना करना पड़ता है। फिल्म का एक दृश्य है जहां एक पार्टी में उषा का पति खुद को उपेक्षित पाता है और घर आने पर गुस्से और जलन से ग्रसित होकर हाथ में बेल्ट लिए उषा से सवाल जवाब करता है। वह उषा को कसम खाने को कहता है, जिसके लिए वह उषा से ज़बरदस्ती करता है। वह कहती ज़रूर है कि "कसम खाती हूँ", पर केशव(उषा का पति) के चले जाने पर अपनी बात को पूरा करते हुए चिल्ला कर कहती है ,"कि जो चाहती हूँ, वही करूंगी"। श्याम बेनेगल के निर्देशन में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण और मजबूत सीन है। इस सब के बीच उषा की बच्ची और माँ दोनों जग तो जाते हैं पर मूक दर्शक बने सब सुनते रहते है। यह समाज ही नहीं बल्कि एक स्त्री के प्रति परिवार कि उपेक्षा को भी दर्शाता है।

उस शादी से निकल कर दूसरी शादी करती है लेकिन वह भी सफ़ल नहीं होती। उसे समझ आ जाता है कि उसके पति का मेल ईगो(अहम) दोनों के रिश्ते के आड़े आएगा। वह राजन से अपना सुख दुख साझा करती है, उसे पसंद करती है, पर उसके साथ रह नहीं पाती। इसके बाद भी वह विनायक काले के साथ तीसरी शादी करती है, उसके घर भी जाती है, उसके बच्चे को भी अपनाती है। लेकिन उसे समझ आता है कि काले का मानसिक दृष्टिकोड़ बहुत सामंतवादी है, औए काले घराने कि औरतें बंधी हुई हैं। काले सामंती मूल्यों से पूरी तरह जकड़ा हुआ है, इस बंधन से

आज़ाद होने के लिए उसे अपने निर्दयी पति का सहारा लेना पड़ता है, वह काले से भी रिश्ता तोड़ लेती है। इसके आगे के सीन्स में संघर्ष नहीं है, कोई संवाद विवाद नहीं है। सब कुछ सीनेमैटिक भाषा में कहा गया है। उषा कि घुटन, उसके बंधन में न रहने कि इच्छा और प्यार पाने कि तड़प को निर्देशक ने बहुत ही सहजता से फिल्म कि भाषा में दर्शाया है। उषा घर-परिवार प्रेम सब चाहती है, मगर अपनी शर्तों पर, वह अंततः सब कुछ छोड़ कर अकेले रहने का फैसला करती है।

3.2 विश्लेषण

फिल्म में उषा कई ज़िंदगियाँ जीती है। वह काम भी करती है और अपनी गृहस्थी जीने कि इच्छा भी रखती है। फिल्म में जब हम उसे पहली बार होटल के कमरे में देखते हैं, तो वह बेचैन और और अस्थिर होती है। वहीं फिल्म के आखिर में जब वह अकेली होती है तो उसमें एक शांति दिखती है और यह उसका खुद का फैसला होता है। उसके अंदर अंतर्विरोध खत्म हो चुका है। उसे पता है कि वह निपट अकेली है और इससे उसे अकेले ही जूझना होगा। अंतिम सीन्स में हम कोई प्रत्यक्ष संघर्ष या वाद-संवाद नहीं देखते। नज़र आती है तो एक स्थिरता, शांति जो संघर्ष को साफ बयां करता है, जिसके लिए चीखने चिल्लाने कि ज़रूरत नहीं।

3.2 अर्थ (1982)

महेश भट्ट द्वारा निर्देशित इस फिल्म में 'मेंटल हैल्थ' और 'महिला सशक्तिकरण' को अहम भूमिका में रखा गया है। जो कि 82 के दशक के लिहाज़ से काफी प्रगतिशील विचार था। दोनों ही विषयों पर ज़रूरी प्रकाश डालने के लिए इस फिल्म की सराहना की जानी चाहिए।

फिल्म को हम शबाना आज़मी के किरदार 'पूजा' की नज़र से देखते हैं। वह अपने पति का इंतज़ार कर रही होती है, जो उसे बताता है की उन्हें अपना घर खाली करना होगा, क्योंकि इंदर(पूजा का पति) को नौकरी से निकाल दिया गया है। पूजा के लिए यह बहुत बड़ा झटका होता है क्योंकि यह घर उसका सपना होता है।

बचपन से ही एक अनाथ की तरह पले बढ़े होने के कारण अपना घर और परिवार उसके लिए बहुत अहम है। जब इंदर पूजा को अपना घर देता है तो यह पूजा को चौंका देता है। वह अपने एक दोस्त के साथ एक नई कंपनी शुरू करता है और एक फिल्म की शूटिंग के काम से शहर से बाहर जाने का प्लान बन जाता है। पूजा घर को सजाने और सँवारने के काम में जुट जाती है, जिसके लिए इंदर उसे पैसे देकर जाता है। पूजा को रत्ती भर खबर नहीं लगती की उसका पति कविता के साथ एक्स्ट्रामैरिटल अफेयर में पड़ जाता है। कविता इंदर पर शादी का दबाव डालती है और वो पूजा को सच्चाई बता देता है। सब जान कर पूजा के सारे सपने बिखर जाते हैं। पूजा की शादी और वह मान्सिक तौर पर टूट जाते हैं और वह उस घर को छोड़ देती है। सब पीछे छोड़ पूजा एक नए जीवन कि ओर बढ़ जाती है। वह अपने लिए एक नयी ज़िंदगी बना लेती है।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि कविता कि तबीयत काफी खराब है। साथ ही लगातार खराब स्वास्थ होने कारण उसे यह डर खाये जा रहा है कि इंदर उसे छोड़ कर वापस पूजा के पास चला जाएगा। कविता की माँ के अनुरोध पर पूजा उससे मिलने का फैसला करती है, ताकि उसकी आत्मग्लानि थोड़ी कम हो सके।

इसी दौरान पूजा का दोस्त उससे अपने प्यार का इज़हार करता है, लेकिन वह जीवन में अभी कुछ करना चाहती है और उसे मना कर देती है। इंदर भी इसी बीच पूजा के पास वापस आना चाहता है और उसे अपने गलती पर पछतावा होता है लेकिन पूजा साफ इंकार कर देती है। वह अपने तरीके से ज़िंदगी जीने का चुनाव करती है।

3.2.1 विश्लेषण

फिल्म का सेटअप पर्दे की जरूरतों को ध्यान में रखते हुये भी एक रस्टिक और अनछुए दृश्य की ओर जाता है। हम साफ देख सकते हैं निर्देशक ने एक मजबूत महिला किरदार को पर्दे पर जीवंत करने का भरसक व सफ़ल प्रयास किया है। पूरी ही फिल्म में हम साफ देख सकते हैं कि पूजा का किरदार बाकी सभी किरदारों पर हावी रहा। कहानी वाकई पूजा की ही कहानी लगती है, न की नायक की नायिका की कहानी। यह 80 के दशक के लिए एक क्रांतिकारी कदम है, नायक के एक फैसले से नायिका का जीवन बादल जाता है, लेकिन वो उसपर निर्भर रहने या उसके बदलने का इंतज़ार करने के बजाय अपने जीवन बागडोर अपने हाथ में लेने का कठिन फैसला करती है। अपने फैसले खुद लेने का दृढ़निश्चय करती है। साथ ही जीवन यापन के लिए किसी पुरुष पर दोबारा निर्भर नहीं होती और खुद ही अपने जीवन के सही मायने, 'अर्थ' खोजने निकल पड़ती है। उसका जीवन अस्त-व्यस्त ज़रूर होता है लेकिन वह वहीं फंसी नहीं रह जाती बल्कि अपने लिए नए रास्ते बनाती है।

3.3 लज्जा (2001)

लज्जा दबी कुचली औरतों की कहानी है। कहानीकार ने चार मुख्य महिला पात्रों के मध्यम से समाज को आईना दिखाने का सफल प्रयास किया है। ज़रूरी बात ये है कि यह कहानियाँ स्त्री पात्रों के ही नज़रिये से दिखाई गई हैं, न कि किसी पुरुष के दृष्टिकोण से। फिल्म निर्माता का प्रयास साफ दिखता है कि समाज के चार भिन्न तबको से मुख्य महिला पात्र उठाए गए हैं। फिल्म साफ दर्शाती है कि समाज का कोई भी हिस्सा हो वहाँ औरतों कि दशा दयनीय ही है।

हम देखते हैं कि फिल्म विदेश के एक दृश्य से शुरू होती है और मुख्य पत्रों में से एक **वैदेही** की कहानी शुरू होती है, वह अपने समाज में दबदबा रखने वाले एक रसूखदार व्यक्ति(रघु) की पत्नी होती है। रघु को दूसरी औरत के साथ देखने के बाद जब वह अपने माता-पिता के पास आती है तो उसे तिरस्कार झेलना पड़ता है। दूसरी ओर रघु एक हादसे का शिकार हो जाता है और उसे पता चलता है की हादसे में लगी चोट के कारण वह एक शारीरिक विषमता से ग्रसित हो चुका है और वह अब पिता नहीं बन पाएगा। इसी दौरान उसे अपने फॅमिली डॉक्टर से वैदेही के गर्भवती होने का पता चलता है। रघु उसे ढूंढ कर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाने के लिए घर वापस लाने की कोशिश मे लग जाता है। वैदेही रघु से दूर जाने के प्रयास के बीच ही ऐसी और औरतों से मिलती है जो समाज की रूढ़िवादी सोच और उसका बचाव करते गिद्धों से जूझ रही होती हैं। यही फिल्म की आगे की कहानी का रोडमैप बनता है।

सबसे पहले वैदेही **मैथली** से मिलती है। जहां हम देखते हैं कि मैथली के पिता लड़के वालों के अपमान और दहेज कि मांग के बोझ तले दबे जा रहे हैं। मंडप में इस बात का इंतज़ार हो रहा है कि दहेज कि रकम पूरी हुई कि नहीं। लड़के का बाप बात-बात पर लड़के के मंडप से उठ जाने कि धम्की दे रहा है। वैदेही के पिता सर झुकाये लड़के पक्ष से ऐसे माफी मांग रहे हैं जैसे बेटी के बाप हो कर उन्होने कोई भारी अपराध कर दिया हो। वैदेही पिता का अपमान बर्दाश्त नहीं कर पाती और शादी से मना भी कर देती है, साथ ही हम वैदेही का एक मजबूत मोनोलौग भी देखते है। जिसमे वो मन का सारा दर्द और उसके लिए जिम्मेदार सामाजिक रूढ़ियों का खुलकर विरोध करती है।

इसके बाद हम देखते हैं वैदेही राजू के गाँव पहुँचती है। यहाँ उसकी मुलाक़ात **जानकी** से होती है, जो कि एक एक्ट्रेस है और अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से जीने में यकीन रखती है। वह अपने ही साथ काम करने वाले मनीष से प्यार करती है और गर्भवती होती है। मनीष को इसका पता चलते ही वह जानकी पर शक करता है और उसे अपनाने से माना कर देता है। जानकी मानसिक तौर पर हताहत होती है और स्टेज पर अपना नियंत्रण खो देती है। असल डाइलोग्स कि जगह स्टेज पर उसके मन का क्लेश निकलता है, और चूंकि वह सीता का किरदार निभा रही होती है तो लोगों को यह

अपमानजनक लगता है। जिसकी वजह से दर्शक उत्तेजित हो जाते हैं और कलाकारों पर हमला कर देते हैं। जानकी इस उपद्रव में घायल हो जाती है और अपना बच्चा खो देती है।

इसी बीच हम देखते हैं रघु भी वहाँ पहुँच जाता है लेकिन वैदेही फिर बच निकलती है और एक गाँव में पहुँचती है। यहाँ वह रामदुलारी से मिलती है, जो की एक डॉक्टर है और अपने साथ और महिलाओं को प्रशिक्षण भी दे रही होती है। रामदुलरी का बेटा और गाँव के जमींदार की बेटी को आपस में प्यार हो जाता है। जमींदार और उसका भाई गाँव के गुंडों की तरह होते हैं और रामदुलारी की निर्मम हत्या कर देते हैं। इसी बीच सीन में अजय देवगन की एंट्री होती है, जो की एक डाकू होता है और सामाजिक न्याय अपने हाथ में लेने में विश्वास रखता है। वैदेही गाँव में ही हो रहे एक कार्यक्रम के दौरान जमींदार के चेहरे से मुखौटा उतार फेंकती है। उसका मानसिक खोखलापन सबके सामने उजागर कर देती है।

3.3.1 विश्लेषण

फिल्म में **मनीषा कोइराला** यानि **वैदेही** (जिसको रायटर डाइरेक्टर ने कहानी के माउथ-पीस की तरह इस्तेमाल किया) का किरदार नारी की उस आवाज़ की भूमिका निभाता है जिसे समाज ने कमजोर और असहाय मानकर पीछे छोड़ दिया। अपनी मर्ज़ी और इच्छाएं उस पर थोप दीं। आखिरकार वो अपने ऊपर हो रहे अत्याचार से लड़ने की ठानती है और उसे यह एहसास होता है की वह एक स्त्री के तौर पर कितनी सक्षम और शक्तिशाली है लेकिन उसके आस-पास के समाज ने उसे कितना असहाय और कमजोर बना रखा है।

वैदेही के अलावा सभी पात्र विरोध तो करते हैं पर जीत नहीं पाते है। वैदेही का किरदार उन सभी पत्रों की जीत के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।

4. परिचर्चा

प्रस्तुत शोध के लिए अध्यन के दौरान ये साफ तौर पर दिखता है कि फिल्मों में महिलाओं का योगदान शुरुआती दौर से ही रहा है। पर्दे पर स्त्री कि भूमिका की बात करें तो कमियाँ साफ तौर पर दिखती हैं। लेकिन अगर 80-90 के दशक की बात करें तो अधिकतर फिल्मों में महिलाओं कि भूमिका अहम और प्रगतिशील रही है।

भूमिका जैसी फिल्म जहां एक औरत के जीवन की उथल पुथल को बड़े ही बेबाक तरीके से दिखाया गया है, तत्कालीन दौर के लिए एक क्रांतिकारी फिल्म है। यह एक ऐसे कलाकार की कहानी है जो स्वयं की खोज में मालूम पड़ता है और अपने आस-पास के लोगों के अलावा अपने आप से भी जूझता हुआ मालूम पड़ता है। एक स्त्री की स्वयं की तलाश समकालीन दौर के लिए अपवाद ही है। कहानी के मुख्य पात्र का महिला होना इसमें एक नया आयाम जोड़ता है। हम फिल्म में देखते हैं कि कैसे एक औरत पित्रसत्तात्मक समाज में रहने और अपनी पहचान बनाने कि कोशिश करती है, लेकिन उसके हाथ निराशा ही लगती है। वह फिर भी हार नहीं मानती और ज़िंदगी को मौका देती है। बार बार कोशिश के बावजूद उसे जीवन से वो नहीं मिलता जिसकी उसे आकांशा होती है। धीरे-धीरे उसे यह समझ आ जाता है कि दुनिया समाज के नियम इंसान को बांधने या किसी तरह के आंकलन के बजाय जीवन यापन के लिए होने चाहिए। जब यह व्यक्ति कि आंतरिक शांति भंग करने लगें तो इनकी उपयोगिता खत्म हो जाती है।

जहां एक तरफ समाज में आदमी का आकलन उसके काम से तो औरतों का आकलन उनके रिश्तों से होता है, वहीं इस फिल्म में हम देखते हैं कि उषा इसकी चिंता न करते हुये लगातार इस कोशिश में लगी रहती है कि उसे आंतरिक सुख और शांति कैसे मिले। यही इस फिल्म कि आत्मा है, जहां नायिका लगातार अपनी खोज में लगी हुई है। यह

फिल्म नारिवाद के उस दौर में आई थी जब पश्चिमी दुनिया में नारिवाद का स्वर बुलंद होना शुरू हो चुका था। इसलिए भी यह फिल्म एक महत्वपूर्ण जगह रखती है।

'अर्थ' फिल्म कि बात करें तो इस फिल्म के किरदार और कहानी दिखाती है कि कैसे दांपत्य में किसी दूसरी औरत के आ जाने से सभी समीकरण बादल जाते हैं और एक औरत कि ऐसे में क्या मनोदशा होती है। फिल्म आलोचनात्मक नहीं है, कहानी तीनों में से किसी किरदार पर सीधा प्रश्न नहीं उठाती। बल्कि पूजा और कविता का जीवन ही इस फिल्म का केंद्र बिन्दु है। दोनों ही महिलाएं एक ऐसे पुरुष पर निर्भर हैं जो अपनी पत्नी को छोड़ किसी और महिला की ओर आकर्षित हो जाता है। कहानी में हम पूजा(पत्नी) को एक आज़ाद और खुले विचारों वाली महिला के रूप में देखते हैं। पूजा को एक सशक्त महिला के रूप में दिखाया गया है, जो ऐसी स्थिति में भी खुद को संभालने का भरसक प्रयास करती है। कविता को भी किसी खलनायिका के रूप में न दिखा कर उसके किरदार को भी गहराई से दिखने की अच्छी कोशिश की गयी है। फिल्म में पूजा के ही समानान्तर उसकी हाउस हेल्प को भी दिखाया गया है जो घरेलू हिंसा से घिरी हुई है और लगातार जद्दोजहद में लगी हुई है कि उसकी बेटी को उसके जैसी ज़िंदगी न जीनी पड़े।

फिल्म बहुत ही सधे हुये तरीके से **फ़ीमेल अजेंसी** कि बात करती है। शुरुआत में जो पूजा अपने पति के धोखे पर रोती है, वही पूजा अंत में अकेली पर सशक्त नज़र आती है। अंततः वह अपनी हाउस हेल्प कि बच्ची को भी गोद लेती है और एक मज़बूत चरित्र के रूप में उभरती हुई दिखती है। शुरुआत में हम देखते हैं कि इंदर के जीवन में आने वाली कविता को भी एहसास होता है कि इंदर के साथ वह खुश नहीं है और वह भी इस रिश्ते को खत्म करने का फैसला करती है। वहीं जब इंदर पूजा के पास वापस जाता है, तो पूजा उसका इंतज़ार नहीं कर रही। वह उसे अपनाने से मना कर देती है।

इस फिल्म में हम दोनों ही महिला किरदारों का भावनात्मक और मानसिक विकास देखते हैं। दोनों ही एक पुरुष पर निर्भर हो जाती हैं और फिर उन्हें एहसास होता है कि यह उन्हें वो आंतरिक औए मानसिक शांति नहीं दे रहा जो वो ढूंढ रही हैं। दोनों ही महिलाओं को अपने जीवन की कमान अपने हाथ में लेते हुये दिखाया गया है। एक तरह से दोनों ही किरदार अपनी यात्रा पर निकल चुके हैं। दोनों ही महिलाओं ने खुद को स्वीकार कर लिया है, और किसी नायक का इंतज़ार नहीं कर रही हैं।

अब अगर हम 'लज्जा' कि बात करें तो इसमें पित्रसत्तात्मक मानसिकता को चुनौती दी गई है। फिल्म मुख्यतः चार स्त्रियों की कहानियों को एक कहानी के रूप में दिखाती है। फिल्म में चारो ही नायिकाएँ पुरुष के दुर्व्यवहार को झेलती हैं और उससे लड़ती है। साथ ही यह भी कहना गलत नहीं होगा कि एक कड़वी गोली को पचाने के लिए स्टोरी में मेल किरदारों को बुना गया है। अनिल कपूर का किरदार, जो कि एक ठग और अजय देवगन का किरदार जो एक विद्रोही है, दोनों ही अभिनेत्रियों के साथ कंधे से कंधा मिला कर लड़ते दिखते है। ज़ाहिर है कि समाज में औरत का किसी विषय विशेष को लेकर अपनी आवाज़ उठाना या लड़ना इतना आसान नहीं है और चूंकि सिनेमा समाज का ही आईना है तो बड़ा मुश्किल है कि तथ्यों से जुड़ी फिल्म में अकेली लड़ती औरत को जीतता हुआ दिखाना और लोगों द्वारा उसे स्वीकार किया जाए। इसीलिए शायद ये किरदार बुने गए, क्योंकि अक्सर हम यही देखते आए हैं कि फिल्म में स्त्रियों को साधन सम्पन्न पुरुष ही बचाता हुआ आया है।

हम देखते हैं कि कैसे रघु, वैदेही को एक इंकुबेटर से ऊपर कुछ नहीं देखता। चूंकि एक हादसे के चलते वह संतान पैदा करने में असक्षम हो चुका है, तो वह गर्भवती वैदेही को घर लाने के पीछे पड़ा हुआ है। इसमे वैदेही कि इच्छा की कोई जगह नहीं है, उसके सम्मान या जज़्बातों के कोई मायनें नहीं है।

मैथली की बात करें तो उसकी शादी हो तो उसके प्रेमी से ही रही है, लेकिन समाज के ढकोसलों में लिप्त उसके माँ-बाप दहेज के लोभी हैं और इसे अपना अधिकार मानते हैं। साथ ही लड़का भी इसका विरोध नहीं कर रहा। ऐसे में पिता का अपमान होते देख मैथली के सब्र का बांध टूट जाता है और वह अपने लज्जित होते पिता का साथ देते हुये, वर पक्ष को आईना दिखती है और एक बहुत ही स्ट्राँग मोनोलौग डिलीवर करती है। यह किरदार दहेज प्रथा को साफ तौर पर चुनौती देता हुआ दिखता है।

जानकी की बात करें तो वह एक स्वतंत्र विचारों वाली और अपने फैसले खुद लेने वाली महिला है। वह जिससे प्रेम करती है उससे भी उतने ही समर्पण की उम्मीद रखती है, जितना वो खुद एक रिश्ते में समर्पित है। लेकिन अफसोस, जब उसे वह नहीं मिलता तो वह निराश होती है। अपने प्रेमी द्वारा बच्चे के पिता के संबंध में अपने ऊपर प्रश्न उठाय जाने पर वह अशांत हो जाती है। उसके मन का क्लेश अभिनय के दौरान डायलौग्स के रूप में बाहर आ जाता है। जिसपर दर्शकों की प्रतिकृया हमें बताती है कि समाज के विरुद्ध अगर सीता भी विरोध करे तो समाज उसी को दोषी बताएगा। यह समाज कि मानसिकता और जानकी के संघर्ष को दर्शाता है। जहाँ छल भी उसके साथ ही हो रहा है और परीक्षा भी उसी की ली जा रही है।

रामदुलारी कि बात करें जो गाँव कि एक निपुण दाई है, तो वह गाँव के जमींदार को चुनौती देती है और वहीं उसका बेटा जमींदार कि बेटी से प्यार करने लगता है, जिसकी कीमत उसे अपनी जान से चुकानी पड़ती है। यह इस बात का उदाहरण है कि अपने हक़ और सम्मान की लड़ाई में औरत को हुमेशा भारी कीमत चुकनी पड़ती है।

औरत का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है और ये तीनों फिल्में इस संघर्ष को बखूबी दर्शाती हैं। घर से लेकर बाहर तक जद्दोजहद का सामना करने के बाद भी अक्सर हार ही मिलती है। लेकिन इन फिल्मों का उद्देश्य एक परिकथा से इतर जीवन की सच्चाई को दिखाना था जिसमें ये सफल होती दिख रही हैं। इन फ़िल्मों के किरदार अपने स्त्री पात्र के साथ काफी हद तक न्याय करते हैं।

5. निष्कर्ष

यह कहना गलत नहीं होगा की फिल्मों की पटकथा से लेकर किरदार और सिनेमैटोग्राफी तक एक फिल्म के मैसेज को दर्शकों तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। इन कहानियों का सारांश हमें नारिवाद की ओर ले जाता है। स्त्रियों की आवाज़ को समाज में बुलंद करता है। चाहे वो वैदेही हो, पूजा हो या उषा स्त्री पात्र जब औरत की कहानी कहते हैं तो वह प्रभावशाली और व्यापक होते हैं। भारतीय सिनेमा ने शुरुआती दौर से ही औरत के नज़रिये से संवेदनशील कहानियाँ, कथानक और किरदार बुनने शुरू कर दिये थे। यह किरदार कहाँ तक सच्चाई के साथ न्याय करते हैं ये चर्चा का विषय अवश्य हो सकता है लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि ऐसी संवेदनशील फिल्मों की समाज को आवश्यकता है। आज के दौर में जहां अगर कुछ अपवादों को छोड़ दें तो महिलाओं को आइ-कैंडी कि तरह प्रस्तुत किया जाता है, वहीं ये फिल्में हमें सही मार्गदर्शन देती हैं कि कैसे पर्दे पर एक नारी की कहानी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। अपने समकालीन दौर के लिए ये फिल्में काफी साहसी और क्रांतिकारी कोशिश हैं।

संदर्भ

1. Ayushi G. “Analyzing Portrayal of women in Bollywood Cinema.” J Mol Genet Med 11 (2021): 180.
2. Singh, Priyanka & Kumari, Pallavi. (2024). EVOLUTION OF WOMEN IN INDIAN CINEMA : A COMPARATIVE ANALYSIS OF DECADES

THROUGH 10 ICONIC FILMS. ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts. 5. 10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.1041.

3. Singh, P., & Kumari, P. (2024). EVOLUTION OF WOMEN IN INDIAN CINEMA : A COMPARATIVE ANALYSIS OF DECADES THROUGH 10 ICONIC FILMS. *ShodhKosh Journal of Visual and Performing Arts*, *5*(1). https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.1041
4. Agarwal, Aditi & Kumar, Pradeep. (2024). INFLUENCE OF CHANGING PORTRAYALS OF WOMEN IN HINDI CINEMA ON YOUTH'S PROGRESSIVE GENDER ATTITUDES. ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts. 5. 10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.1750.
5. Prakash, Rakesh. (2021). Women in Bollywood. Psychology and Education Journal. 58. 4856-4863. 10.17762/pae.v58i1.1646.
6. Pallavi Jha, "Portayal of Women in Different Eras of Indian Cinema," *SSRG International Journal of Humanities and Social Science*, vol. 8, no. 2, pp. 51-53, 2021. *Crossref,* https://doi.org/10.14445/23942703/IJHSS-V8I2P109
7. Sibal, Vatika. (2018). STEREOTYPING WOMEN IN INDIAN CINEMA. Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies. 5. 10.21922/srjis.v5i43.11253.
8. Sundke, Aatif. (2021). Shifting Paradigms of Female Characters in Bollywood Movies.
9. Ayob, A. (2009). *The changing construction of women characters in popular Hindi-language cinema from 1970 to 2007*. https://wiredspace.wits.ac.za/bitstream/10539/7064/2/Report%20version%2016.pdf